तुषार-हार

कन्नड़

'काव्यानंद'

हिन्दी

'सारंगदेव'

कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा, धारवाड.

तुषार-हार

कन्नड़

सिद्दय्या पुराणिक 'काव्यानंद'

हिन्दी

काशीनाथस्वामी सारंगमठ 'सारंगदेव'

'भावसंगम'
कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा,
धारवाड़

• प्रकाशक
कर्नाटक प्रांतीय हिन्दी प्रचार सभा
धारवाड़

• प्रथम संस्करण
1965

• सर्वाधिकार
स्वरक्षित

• मूल्य
एक रुपया पच्चीस पैसे

• मुद्रक
हिन्दी प्रचार प्रेस
धारवाड़

• TUSHAR HAAR
By— Siddayya Puranik
Hindi: *K. C. Sarangmath*

बाल्यकाल के पथप्रदर्शक
ममता के प्रतीक
सत्य शुद्ध कायक निष्ठ
साधु जीवी निठुरभाषी
मेरे बहनोई
श्री वीरभद्रय्या हिरेमठ
और
मेरी बहन
श्रीमती वीरव्वा हिरेमठ
इनके पावन चरणों में
यह "तुषारहार" समर्पित है।

—काशीनाथस्वामी सारंगमठ

प्रकाशक का वक्तव्य

*

राष्ट्रपिता म. गाँधीजी की प्रेरणा एवम् आशीर्वाद के बल पर गत तीस साल से राष्ट्रीय संस्था द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास के तत्वावधान में कर्नाटक प्रांत के उन्नीसों जिलों में बडे पैमाने पर क. प्रां. हिन्दी प्रचार सभा हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रचार कर रही है।

कन्नड़ साहित्य की श्रेष्ठ रचनाओं का हिन्दी में और हिन्दी की उच्चकोटि की कृतियों का कन्नड़ में अनुवाद करवाकर प्रकाशित करने की एक बृहद् योजना सभा ने बनायी है। भारत में राष्ट्रीय एवम् सांस्कृतिक भावैक्य का वातावरण निर्माण करने में यह सबल साधन सिद्ध होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

साहित्य प्रकाशन की योजना को सुयोग्य बनाने के उद्देश्य से 'भाव संगम' की रचना हुई है। उसके मार्गदर्शन में अनुवाद ग्रंथों का प्रकाशन कार्य सफल बन रहा है।

प्रेमचन्दजी का कहना है कि कहानी ऐसी एक रचना है, जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। कहानी एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में व्यक्त होता है।

'तुषारहार' में कन्नड साहित्य के जनप्रिय कवि, कहानीकार, नाटककार और लेखक **श्री सिद्दय्या पुराणिकजी** की लघुकथाओं का संग्रह है। ये कहानियाँ केवल मनोरंजन केलिए नहीं लिखी गयी हैं, बल्कि इनको पढ़ने से पाठक यह अनुभव करेंगे कि समय बेकार नहीं गया, जीवन का अमूल्य अनुभव हासिल किया। ये कहानियाँ आकार में लघु हैं, पर उनका संदेश महान है। छोटे-बड़े सभी इनको पढ़कर अपूर्व प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

अनुवादकार्य बहुत कठिन है। तुषारहार की कहानियाँ अनूदित सी नहीं लगतीं। मौलिकता लिये हुयी हैं। इनकी भाषा सरल, शैली सरस और भाव गंभीर है।

मूल कहानीकार श्रद्धेय सिद्दय्या पुराणिकजी ने अनुवाद करने की स्वीकृति देकर हमारा उत्साह बढ़ादिया है, इसके लिये हम उनके प्रति अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं। हिन्दी अनुवादक **श्री काशीनाथस्वामी** सारंगमठजी ने इसको सभा द्वारा प्रकाशित करने की जो अनुमति सहर्ष दे दी है, सभा उनकी चिरऋणी रहेगी।

प्रसन्नता है कि मैसूर राज्य के शिक्षा विभाग ने इस पुस्तक केलिये पाँच सौ रुपये का अनुदान प्रदान कर हमको प्रोत्साहित किया है, तदर्थ हम तहे-दिल से शिक्षा विभाग का उपकार मानते हैं।

कन्नड कहानियों का यह पहला संग्रह सभा की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, इस संग्रह को पाठक पसंद करेंगे और इसका अच्छा स्वागत भी होगा।

– प्रकाशक

विषय-सूची

अ. नं.	कहानी	पृष्ठ
1	या कुन्देन्दु तुषारहार धवला	2
2	कर्मवीर माँगता नहीं	4
3	पङ्क में लक्ष्मी	6
4	नहीं करो नारी निन्दा	8
5	नमक और शक्कर	10
6	ऊँचे बैठना बेकार	12
7	मन की आग	14
8	जो झट आयेगा, झट जायेगा	18
9	ना मिलै गहरे पानी पैठ	20
10	पडोसी की निंदा मत करो	22
11	छोटों की भी परवाह करो	24
12	इच्छाशक्ति चट्टान को भी उपजाऊ बनाती है	26
13	संकल्पी तुषार सागर में भी स्वतंत्र	28
14	टेढ़े का काम भी टेढ़ा	32
15	गौरव गात्र से नहीं, गुण से	34
16	कौन कब क्या काम आये !	36
17	घमंडी न बनो, विनयी बनो	38
18	परप्रकाश से निजप्रकाश ही भला	40
19	प्रेम मृत्यु को भी जीत सकता है	42
20	जाने कौन क्या हो ?	44
21	कला की पहचान	46
22	सर्वम् शिव प्रसादम्	48
23	जीने मरने की महान समस्या	53

तुषारहा

१

या कुन्देन्दु तुषारहार-धवला

हे सरस्वती माता !

जिस दिन जगत का निर्माण हुआ, उस दिन से आज तक संसार के जीवियों को तू विद्या का वरदान प्रदान कर रही है; बुद्धि बलदान देती रही है और सिद्धि का शुभदान।

चाहे जितना भी दान करें, तू न घटनेवाली विद्यामयी है; वेदस्तुत्या है एवम् विश्वाराध्या है। ज्योति से असंख्य ज्योतियाँ जलती हैं, पर मूल परंज्योति कभी मंद न होती। बेशुमार लोगों को विद्या का वरदान मिलता है, पर तेरे ज्ञान के अक्षय भंडार को कभी इसका पता चलेगा ? तेरी वीणा के तारों से कितने ही राग, स्वर, सुनाद गूँजा करते हैं ; पर कभी उसमें कमी आयेगी ? समय जैसे-जैसे बीतता जाता है, दान जैसे-जैसे बढ़ता जाता है ; वैसे-वैसे तेरी विद्या और तेरी वीणा का संगीत अनंत, अविनाशी तथा अक्षय बनता जाता है। साहित्य का प्रतीक ग्रं है, तो तेरी वीणा संगीत का प्रतीक है। साहित्य एवम् संगीत के समन्वय में सृष्टि की सार्थकता निहित ह।

हे अम्बा !

तुम्हारे पहने हुये "कुन्देन्दु तुषार-हार" मैं कहाँ से लाऊँ ? तोतली बोलियों और छोटे-छोटे लेखों का यह 'तुषार-हार' तुम्हारे चरण-कमलों म अर्पित करता हूँ, "बच्चा माँ की बातें ही दुहराता है। फिर भी बच्चे की तोतली बोली सुनते-सुनते माँ जितनी प्रसन्न होगी और किसी बात से नहीं। उसे वह और कहीं प.येगी ?"

२

कर्मवीर मांगता नहीं

चींटियाँ तो बिल बनाती हैं, मगर साँप उसमें घुसकर उसीको अपना घर बना लेते हैं। कोई पेड़ लगाता है, तो दूसरा उसके फल भोगता है। कितने ही लोगों के

त्याग से संघ-संस्थाओं का निर्माण होता है, लेकिन अंत में कुटिल और धोखेबाज उन पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। बनानेवाला एक और उसका फल भोगनेवाला दूसरा। क्या यह न्याय है ?

यह समस्या कविराज को बेचैन बनाती रही। एक दिन अचानक इसका दूसरा ही रूप नज़र आने लगा। —

" ब्रम्ह ने कविराज की रचना की है, फिर भी उसकी पूजा तो होती नहीं। उसे न कोई पुरस्कार दिया जाता है और न कोई प्रतिष्ठा दी जाती। यह कोई न्याय है ? "

इसी उलझन में कविराज सोये हुए थे। सपने में ब्रम्हदेव के दर्शन हुए। कविराज के कोमल कंठ से गीत फूट पड़े—

हे ब्रम्हदेव ! आपने ऐसी सृष्टि की रचना क्यों की है, जो आप सृष्टिकर्ता को भूल गयी है ? संस्थापकों को धतकार कर अधिकार जमानेवालों का ही यह दुनिया खूब आदर करती है। संस्कृति की जो संजीवनी है, उन वेदों की रचना तुमने की है, विद्याधिदेवता सरस्वतीमाता का सृजन तुमने किया है तथा सकल चराचर सृष्टि को तुमने रचाया है। फिर भी तुम्हारा मंदिर किसीने बनवाया है ? तुम्हारी पूजा और भजन कोई करता है ? यह कौनसा न्याय है !

ब्रम्हदेव मुस्कुराकर बोले, " बेटा उत्तेजित मत बनो। पूजा, यश, उत्सव आदि केलिये मुझे अवकाश ही कहाँ ? सृष्टिकार्य से उदासीन होकर ऐसे कामों में मन नहीं लगा सकता। उधर मन गया, तो इधर सारा कार्य चौपट ही समझो। क्योंकि इन दोनों कार्यों को मैं अकेला संभाल नहीं पाता। सृष्टि करना ही कर्ता का भोग है। कर्ता भोग की चाह न करेगा। कभी ऐसा हुआ, तो समझो कि सत्यानाश ही हुआ।

पङ्क में लक्ष्मी

एक बार गुलाब और केतकी के फूल इस उलझन में पड़े रहे कि सभी फूलों को छोड़कर लक्ष्मी कमल में ही क्यों बसती है ?

एक दिन गुलाब ने केवड़े से पूछा, "अरे, बोल ! हमारे यहाँ जो सुगंध और सौंदर्य है, क्या कमल में है ? लक्ष्मी हम सबको त्यागकर कमल पर ही ऐसे क्यों रीझ गयी है ?"

केवडा बोला, "मैं भी समझ नहीं पा रहा हूँ कि कमल को लक्ष्मी का चरणासन बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तो काँटों का किरीट धारण कर साँप की विषैली फूत्कार सहना ही मुझे क्यों बदा है? शायद इसीको कहते हैं अपनी अपनी किस्मत।"

गुलाब ने कहा, "अरे, यार! तुम्हें काँटों का किरीट तो मिला है; मगर मेरी तरफ़ देखो तो सही। मैं काँटों पर ही खड़ा हूँ। मेरे चारों ओर ऊपर-नीचे काँटे ही काँटे हैं। बोलो न, हमने ऐसा कौनसा पाप किया है? चलो, लक्ष्मीमाता से ही पूछ लें।"

गुलाब और केवड़ा दोनों लक्ष्मी के पास गये और पूछ भी लिया।

लक्ष्मीमाता हँसकर बोली, "कमल का रंग, सुगंध और सुंदरता केलिये नहीं, बल्कि कीचड़ में पैदा होकर कीचड़ ही में वह खड़ा है। इसीलिये मैं उस पर रीझ उठी हूँ। कीच से ही हरियाली होती है, बेल-बूटें फैलती हैं और, धन-धान्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार कीच से सारी संपत्ति प्राप्त होती है। जिसके हाथ कीचड़ में नहीं पड़ते, उसको मैं बिलकुल पसंद नहीं करती।"

नहीं करो नारी निन्दा

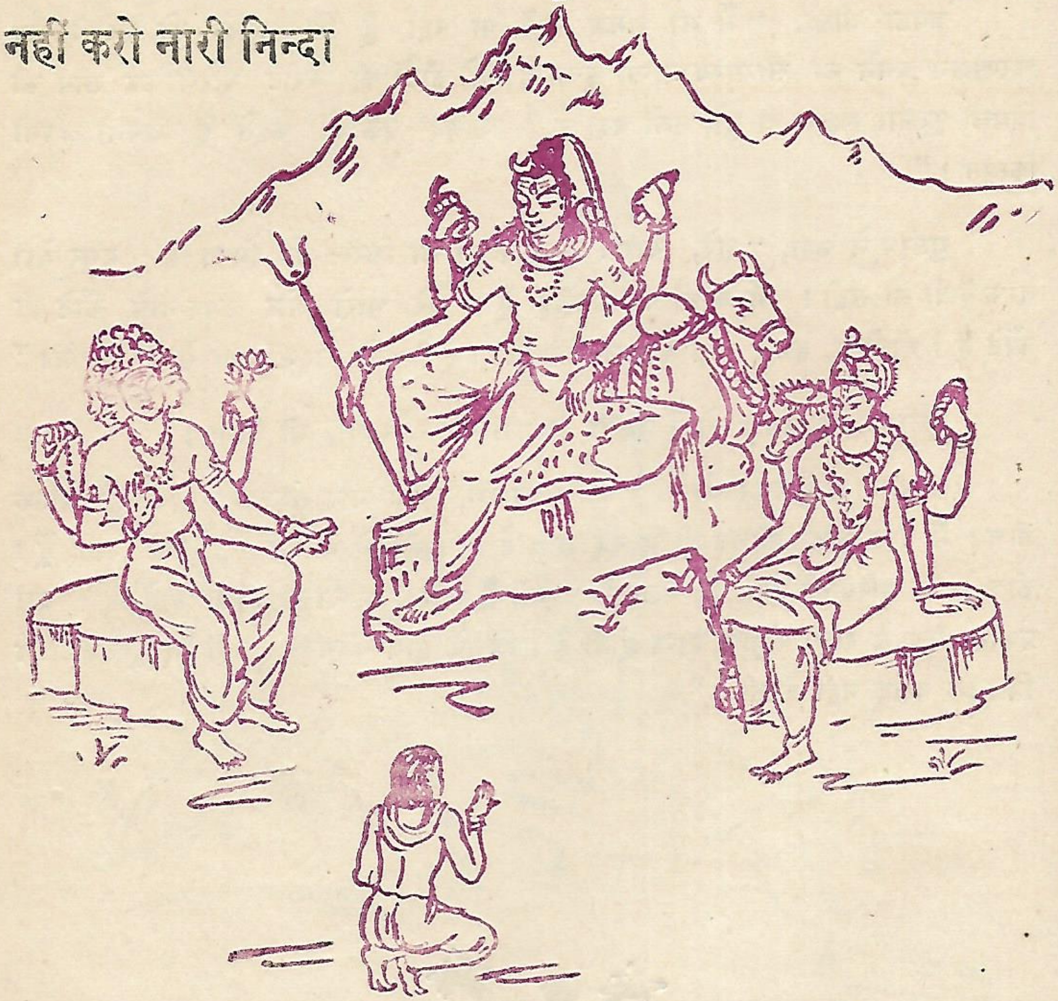

एक गाँव में एक आस्तिक रहता था। वह भगवान के प्रति जितनी श्रद्धा रखता था, स्त्रियों के प्रति उतनी ही घृणा। न जाने उसे एक दिन त्रिमूर्तियों पर एकाएक गुस्सा आ गया। सोचने लगा— "ये तीनों देवपुरुष स्त्रियों के माय-जाल में कैसे फँस गये होंगे ?"

त्रिमूर्ति एक साथ बैठे हुये थे। वहीं जाकर पूछा—

"हे, जगत कर्ता, मारण-जारण मूर्तिगण! आप देवता भी स्त्रियों के पीछे पागल क्यों बने हुये हैं? एक ने स्त्री को मन की खोह में छुपा लिया है, तो दूसरे ने गोद पर बिठा लिया है और तीसरे ने सिर पर चढ़ा रखा है। हे देवाधिदेव! आप महानों का यह हाल है, तो मामूली लोगों की क्या हालत होगी? जरा सोचियेगा कि आप देवता माया के प्रति इतने दीवाने बने हुये हैं, तो वे नादान लोग माया-ममता केलिये क्या नहीं कर बैठेंगे?"

त्रिमूर्ति मुस्कुराये और बोले, "ऐ, भक्तोत्तम! बोलो कि हमारे उपासक भूलोक वासी परस्पर स्नेहभाव से रहते हैं न? कहीं हमारे नाम लेकर आपस में लड़ते-झगड़ते तो नहीं?" आस्तिक ने कहा, "ओह, भगवद्गण! भूलोकवासियों में स्नेहभाव कहाँ? वैष्णव शिवभक्तों को नापसंद करते हैं, तो शैव विष्णुभक्तों को। जगत में होनेवाले झगड़ों क मूलकारण आप देवतागण हैं"

"हमारी स्त्रियाँ जो सरस्वती, लक्ष्मी और गौरी हैं, उनके नाम पर कहीं-कहीं झगड़े नहीं होते रहते?"— त्रिमूर्तियों ने पूछा।

आस्तिक बोला, "देवगण! उनके नाम पर झगड़े कैसे? गौरीमाता के प्रति ऐसा कौन है, जो श्रद्धा नहीं रखेगा! सरस्वती की उपासना कौन नहीं करेगा? लक्ष्मीदेवी की बात तो पूछिये नहीं।"

त्रिमूर्ति बोले, "आस्तिक चूडामणी! हम भी उनका इसी कारण से आदर करते हैं हमारे नाम लेकर होनेवाले झगड़ों की आग को वे शांत करेंगी न? इस विचार से ही हमने उनको अपनी धर्मपत्नी बना लिया है। नारी संसार की शोभा है। नारी जगत् रक्षिका, जगज्जननी और शांतिदूतिका है।

यह जवाब पाकर आस्तिक चुपचाप पृथ्वी लौट आया और विवाह भी कर लिया।

नमक और शकर

स्निग्ध चाँदनी के इन्द्रजाल से समुद्रराज के हृदय में ज्वार उठा था। देश-विदेशों और दसों दिशाओं से बहकर समुंदर में मिली हुई नदियाँ बोल उठी "हे समुद्रनाथ! अपने जन्मस्थान को छोड़कर सैकड़ों मील का रास्ता तय कर हम दौड़ती हुई आपकी शरण में आयी हैं। हमारा भरोसा था कि हम सतियों को आप अधिक चाहेंगे। लेकिन यह झूठ साबित हो रहा है! क्योंकि अब आप पराई स्त्री चाँदनी के मोह में फँसे हुये हैं। क्या यह आपको शोभता है?"

"मैंने किसी से थोडे ही कहा है कि मेरे पास आ जाओ और गले मिलाये रहो। मैंने किसीको मना भी नहीं किया है कि मेरे पास न आ जाओ। तुम सब खुद मेरे यहाँ आयी हो। हाँ, बोलो! किसी ने तुमको यहाँ बुलाया है? फिर आगयी ही क्यों?" समुद्र राजा स्थितप्रज्ञ-सा बोले।

नदियाँ और भी उत्तेजित हो बोलीं, "यह सच है कि हम खुद आपके पास आयी हैं। मगर यह सोचकर आयी हैं कि तुम्हारी छाती के नमक में हमारे हृदय का शक्कर घुलमिल जायँ और तुम्हारा जीवन जरा मधुर बन जाय। पर इतने दिनों से हम अपने हृदय का शक्कर देती रहीं। फिर भी आपकी छाती का नमक जो स्त्री के हृदय के शक्कर में मिलाने पर भी मीठा नहीं बन पा रहा है।"

समुद्र राज ने कहा, "मेरी प्यारियो! मैं भी शक्कर बनूँ एवम् तुम भी शक्कर बनो, इसमें क्या मजा है! मधुर जीवन के लिये शक्कर ही काफी है? नमक से भी स्वाद बढ़ता है। सुखी जीवन के लिये मरद की छाती का नमक और औरत के हृदय का शक्कर दोनों की जरूरत है। तुम्हारे हृदय का शक्कर कोमलता का प्रतीक है, तो मेरी छाती का नमक परिश्रम का फल है। मेरे शरीर का नमकीन पसीना तुम्हारे सौंदर्य को बनाये रखता है। फिर तुम नारियाँ मेरी निंदा क्यों करती हो?"

६

ऊँचे बैठना बेकार

एक दिन की बात है। महादेव बाहर गये थे, पर अब घर लौटे, तो उसके साथ गंगा को देखते ही गौरी सन रह गयी और उसका चमकता चेहरा पीला पड़ गया। गौरी का यह भाव भाँपकर शंकर बोले, "हे प्रिये! चिंता न करो। तुम जो स्थान चाहो, सो मैं दे दूँगा ही। हाँ, मगर झगड़ा मत खड़ा करना। तुममें से एक मेरी गोद में और दूसरी मेरे सिर पर बैठ जाओ।"

नव वधु गंगादेवी उत्साह में पहले ही बोल उठी कि मुझे सिर पर स्थान दीजिये। शंकर ने उसे शिर पर ही बिठा लिया। इस खुशी में गंगा खिलखिलाकर हँस पड़ी। जल धारा के रूप में गंगा के मुँह से जल बह निकला।

"भगवन्! आपकी गोद ही मेरे लिये काफ़ी है।" दीर्घ तपस्या से पुनीत बनी पार्वती बोली। गौरी शंकर की अर्धांगिनी होकर गोद में शोभित हुई। सिर पर बैठी हुई गंगा को शिव के मुख-दर्शन दुर्लभ हो गये। लेकिन गोद में बैठी हुई गौरी को हमेशा महादेव के मुख-दर्शन प्राप्त होते रहे। महादेव के मुख-दर्शन के लिये गंगा उछल-उछल नीचे उतर आती थी, फिर भी उनके चरण-स्पर्श का सौभाग्य तक उसे प्राप्त नहीं होता था।

इससे ऊबी हुई, दुखी पुखी, पछताती गंगा ने तड़प तड़पकर गिड़गिड़ाया, "हे परमात्मा! सिर पर बैठे रहने के विफल जीवन से मैं तंग आगयी हूँ। आपकी गोद न सही, चरण के पास की जगह दीजिये।"

महादेव ने गंगादेवी को मनाया, "जब एक बार तुमने मेरे सिर पर का स्थान चुन लिया है, तो कम से कम कैलास में तुम्हारा स्थान बदलेगा नहीं। यदि मेरे चरणों के पास की जगह चाहोगी, तो वह स्थान भूलोक में जरूर मिलेगा।"

खुशी के मारे गंगा अमृत तरंगों के रूप में हिमशृंगों से उतरकर भूलोक उतर आयी। जहाँ-जहाँ वह गयी, तहाँ-तहाँ महादेव के मंदिर खड़े किये गये। गंगामाई हर जगह महादेव के चरण कमलों को धोती हुई काशीविश्वनाथ के चरण सान्निध्य प्राप्त करके धन्य हुई।

अब वह खूब जान गयी कि सिरपर चढ़े रहने से कोई लाभ नहीं।

७

मनकी आग

एक दिन एक अजीब झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि आग की ज्वाला सब में है, पर अधिक किसमें है? वाद-विवाद ने झगडे का रूप धारण कर लिया। इसका आपस में फैसला न हो सका।

विवादी लोग फेसला लेने के लिये शिव के पास पहुँचे। अपनी अपनी हाँकने का मौका शिव ने सभी को दिया।

पहले-पहल बाँस ने खड़ा होकर कहा— "यदि मैं चाहता तो पहाड़ को भी आग लगा सकता हूँ।"

अब पहाड चुपचाप बैठनेवाला कहाँ? गुस्से में बोला, "अरे बाँस! तेरी आग से मेरा क्या बिगडेगा? अगर मैं ज्वालामुखी होकर फूट पड़ेगा, तो तेरा वंश तहस-नहस हो जायेगा। इसलिए मेरी आग तेरी आग से अधिक भयानक है।"

पृथ्वी गरम होकर बोली, "हे पहाड! खबरदार कि तेरी क्या हस्ती है? यदि मैं चाहती तो भूकंप और ज्वालामुखी के जरिये तुझे निगल लेती।"

पृथ्वी की यह हाँकी समुद्रराज थोड़े ही सह लेगा? जोर से गरज उठा, "मैं जलनिधि हूँ। फिर भी याद रखो कि मेरी कोख में बडवाग्नि जलती है। यदि मैं नाराज हो जाऊँगा, तो सारी दुनिया को जला डालूँगा।"

विज्ञान ने आगे बढ़कर कहा, "सावधान! हाँ, मेरा अनादर मत करो। नहीं तो अणुबम का निर्माण करके पृथ्वी को राख कर दूँगा। आजकल का जमाना मेरा जमाना है। मुझ से बड़ा कौन है?"

विज्ञान के इस ललकार का जवाब देने की हिम्मत किसमें है? सभी के सभी थोड़ी देर खामोश बैठे रहे। कुछ दिनों के पहले ही अणुबम और जल-जनक-बम का अद्भुत स्फोट हुआ था न? यह कौन नहीं जानता? इसीलिये विज्ञान के सामने कौन मुँह खोलने का साहस करेगा?

"मेरी आग तुम से भी भयानक है।" अंत में मानव बोल उठा।

चारों ओर शोरगुल होने लगी: "ओहो, यह कमजोर और अदना-सा मानव हमारी एक उसाँस से उड़ जानेवाला यह क्षुद्रजीव, हम सब को ललकार रहा है। वाह, क्या हिम्मत है भाई, इसकी भी?

अब सभी ने शिव से नम्रतापूर्वक निवेदन किया– "हे महादेव! इस क्षुद्र मानव ने हम सबों की खिल्ली उड़ा दी है। सभी प्रकार की आग का मूल स्रोत आपका जो अग्निनेत्र है उसे खोलकर मानव को भस्म कर डालिये न?

शिव मुस्कुराकर बोले, "गड़बड़ क्यों मचा रहे हो? मानव क्या कहना चाहता है, पूरा तो सुन लो न?" तब एक साथ सभी ने मौन होकर इसकी हामी भर दी।

अब मानव गंभीर होकर बोला, "हे, महादेव; इन सब में एक ही आग है। लकिन मुझ में सैकड़ों किस्म की ज्वालाएँ छिपी पड़ी हैं। भूख की आग, झूठ की आग, द्वेष की आग, लोभ की आग, मद की आग, मोह की आग ऐसी कितनी ही ज्वालाएँ हैं, उन सब की गिनती क्या हो सकती है? पहले पहल मेरे मन के अंदर आग सुलगनी चाहिये नहीं तो बाहर आग लगेगी नहीं। बाहर की आग मेरी अंतराग्नि पर निर्भर है। मेरी आशा से ही आग सुलग सकती है और बुझ सकती है। अब तुम ही लोग बोलो कि किसकी आग भयानक होती है?"

मानव की यह बात सुनकर सभी मौन बने रहे। एक भी मुँह खोल न सका।

शिव मंदस्मित हो बोल उठे, "मानव! तुमने जो कहा, बिलकुल सही है। तेरे मन की खोलती आग में जल जाने से बच जाऊँ, सोच कर मैंने हिमगिरि में अपना घर बसा लिया है। अलावा इसके हिमराज की कन्या के साथ मैंने विवाह कर लिया ह। मैंने सिर पर चन्द्रकलाभरण धरकर सदा सर्वदा अपने जटाजूट से गंगा की धारा को बहते रहने का प्रबंध कर लिया है। ओह, मानव के मन की आग भी कैसी आग है! उस आग को जब मैं खुद सह नहीं सकता, तो इन सब का क्या हाल होगा।"

महादेव की यह बात सुनकर सभी बेजवाब हो गये। पहाड़, पृथ्वी, सागर, एक एक करके वहाँ से खिसक गये।

जो झट आयेगा, झट जायेगा

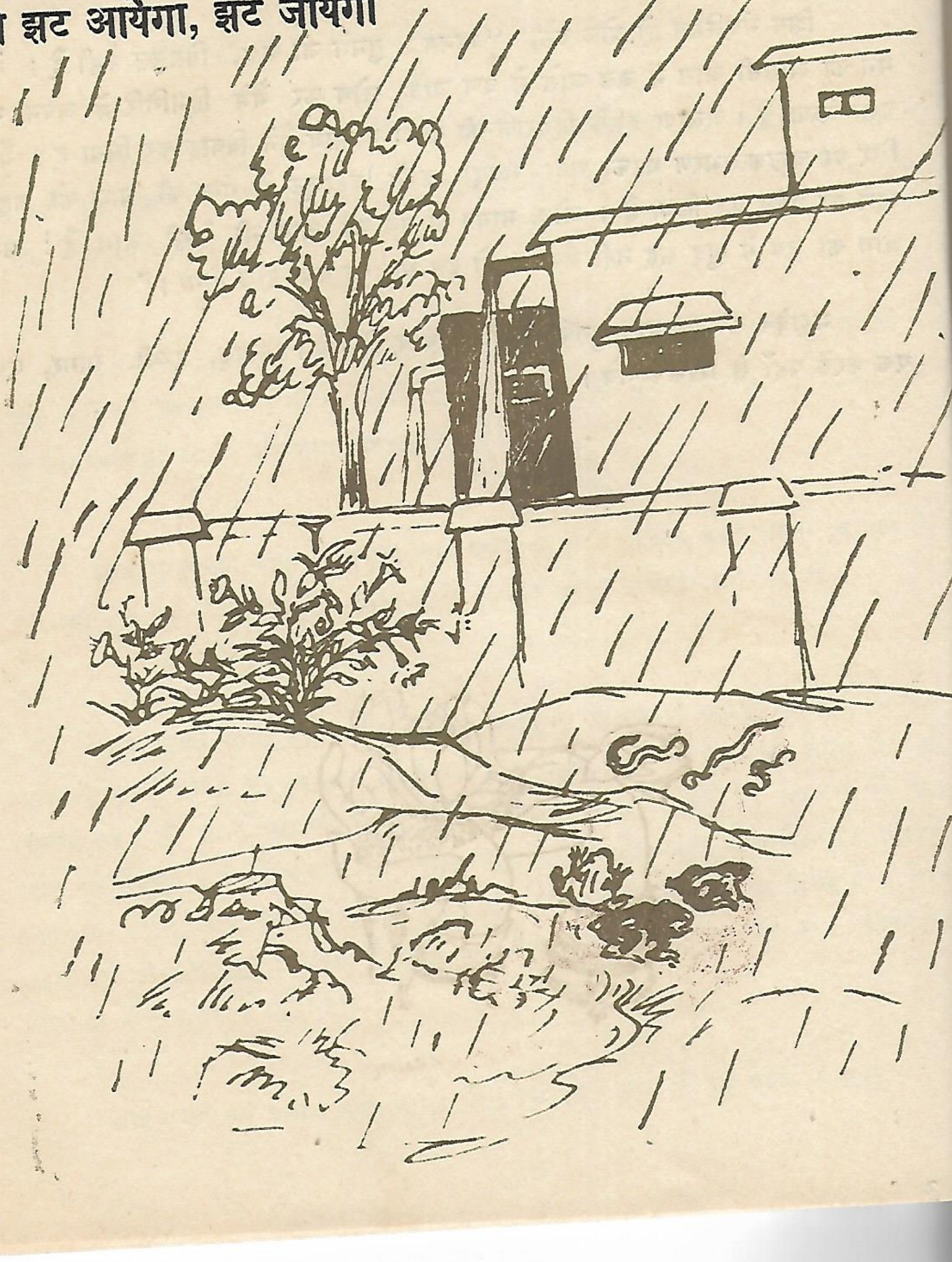

वर्षा बरसी। देर न हुई कि सड़कें, झरनें, नल-नाले भरकर बहते हुये जोर शोर मचाने लगे,, "अभी बड़ी बड़ी नदियाँ तो भरी नहीं; हम भरकर छलछलाती हुई बहने लगी हैं।"

घर-घर के परनाले 'धो-धो' आवाज करते बड़बडाने लगे, "गंगावतरण" अब कहाँ? हम खुद गंगावतरण हैं।

गड्ढों के सोते जल में मेंढकों की 'टरटर' मची रही, "हमारे सरीके वे कौन हैं, जो जमीन पर उतर आये और आते-आते ही शोर मचाने लगे?"

घर के पिछवाडे में खिले हुये बदबूदार फूल खिलखिलाकर हँस पड़े, "अरे यार! देखो न हम कितनी जल्दी खिल उठे हैं! कहाँ वे कमल के फूल? कहाँ वे बकुल-चम्पक और कहाँ वे मल्लिका?"

तड़के का कोहरा, जो सब को अंधा बनानेवाला है, ढींग हाँकने लगा, "अब तो इस धरती पर मेरा ही सर्वाधिकार होगा।"

बरसात के कीड़े-मकोड़े फूले न समाये और 'हाँमी' का राग अलापने लगे।

इस घटना को हुये बहुत दिन बीत गये। अब तक झरनें सूख गयीं। परनालों के जल का बहाव कभी का बंद हो चुका था। गड्ढों के जलवासी मेंढकों की टरटर बहुत पहले रुक गयी थी। घर के पिछवाडे में खिले हुये बदबूदार फूल ख़ाक में घुल मिले थ। भोर का कोहरा गायब हुआ था। वर्षा के कीड़े-मकोडों का तो कहीं पता न था।

नदियाँ भरकर बहती रहीं। पंक में कमल खिलते रहे। बकुल और चम्पकों की महक हर तरफ़ बिखरी रही। हँस सरोवरों में नहाते तैरते रहे। सूर्य किरणों की रासक्रीड़ा होती रही।

जहाँ-तहाँ के चश्मों के स्रोतजल को निहार कर नाले आँसू बहाने लगे। जब कभी हवा के झोंके पड़ते हैं, तब परनाले तड़प तड़पकर रह जाते हैं। कहीं कहीं बचे-खुचे मेंढक सन रहकर बोल उठते हैं, "ठीक है, जो झट आता है, वह झट जाता भी है।"

६

ना मिलै गहरे पानी पैठ

एक दिन जोर की वर्षा हुई। परवत पर की वर्षा का पानी जलप्रपात के रूप में बहकर समुन्दर में जा मिला। सागरतट का पानी सागर में विलीन न होकर जहाँ का तहाँ गढे में खडा रहा। सागर में मिला हुआ पानी उस गढे के पानी से बोला-- "तुम जैसे कायर को मैंने कहीं नहीं देखा है। मुझे देखो! पहाड की चोटियों पर से उछलता, कूदता दरियों और खाइयों को पारकरता हुआ सैकडों मीलों का रास्ता तय करके समुंदर में आ मिला हू। तुम समुंदर के किनारे होते हुये भी चार कदम आगे बढकर सागर में मिलने के बजाय लूले-लंगडे का तरह जहाँ का तहाँ पड़े रहे हो।"

सागरतट के पानी ने सविनय जवाब दिया, "अरे भाई! क्यों बडबडाते हो? वक्त आने पर मालूम होगा कि कौन समझदार है।

कुछ दिन बीत गये। धूप की गरमी से समुद्र खौल उठा। सागर का पानी गरम होकर चडपडाने लगा, "अपार सागर में मिला हुआ हूँ। मेरी हालात इतनी खराब हो गयी तो सागरतट के गढे के पानी का क्या हाल हुआ होगा? यह सोचते-सोचते गढ़े के पानी की तरफ अपनी नज़र दौड़ायी। क्या देखता है कि वहाँ पानी का एक कण भी शेष नहीं है। उसकी इस स्थिति पर तरस खाने लगा, "अय्यो, तू समुंदर में मिल जाता, तो मेरी तरह जिन्दा तो बचता।" समुंदर के किनारे खडे हुये नारियल के पत्ते और बौन बोल उठे, "अरे मेरे प्यारे दोस्त, मैं यहाँ तुमसे अधिक सुखी हूँ। किसी प्रकार की चिंता नहीं। पृथ्वीमाता की गोद में आराम से चन्द दिन बिताये। उसके हृदय की मिठास का स्वाद चख लिया। मेरा जीवन भी मधुर बना उसीकी आज्ञा के अनुसार इन नारियल के फलों में मीठे जल के रूप में भर पड़ा हूँ। ऊपर हरे छिलके का जाकेट पहना हूँ। इससे गरमी का डर नहीं;"

सागर में जा मिला पानी गरम साँस लेता हुआ बोला, "हे मित्र! तुमने ठीक काम किया है। बिना गहरे पानी पैठ ऊपर उड़ चढ़ा है। सब के लिये मीठे बन के खड़ा हुआ है। मैं बड़ों के आश्रय की चाह कर आया तो क्या मिला? गहराई नहीं, ऊँचाई नहीं और मीठा भी नहीं बन सका।

नारियल का जल बोला "अरे दोस्त! पछताते क्यों हो? यह मत सोचो कि अब मेरे बस की बात नहीं रही। यदि मेरा अनुसरण करना चाहता है, तो अभी वह सुअवसर मिल सकता है। धूप से भाप बनकर ऊपर उड़ो। बादल होकर बड़ों के आश्रय की चाह में अंधे मत बनो। केवल पहाड़, परवत पर वर्षा न करके बाग-बगीचे और खेतों में बरसाकर मेरी तरह फल, फूल, पत्ते, धान और अनाजों में घुल मिल जाओ। तुम अकेले का नहीं, तुमको हासिल करनेवालों का जीवन भी मीठा बनेगा।"

निराशा की निशा में भटकनेवाले सागर के पानी को आशा की प्रकाश-किरण दिखाई देने लगी।

१०

पडोसी की निंदा मत करो

एक वन में अनार और बिंबाफल आसपास में फूले फले थे। अनार ने बिंबाफल को देखकर नफरत की हँसी हँस दी। एक एक करके सभी बीज झड़ पड़े। फिर भी उसकी घमंडी कम नहीं हुई। कुछ दिनों के बाद अनार और बिंबाफल दोनों सूखकर जमीन पर गिर गये और मिट्टी में एक हो गये। तब भी अनार का अहंकार वैसे ही बना रहा।

दूसरे जन्म में बिंबाफल एक हसीना के ओंठ और अनार उसके दाँत होकर पैदा हुये। दाँत का काम पान खाने का रहा। सुपारी और पान चबाने का दर्द दाँत को होता रहा; लेकिन उसका स्वाद चखने का सौभाग्य जीभ के जरिये ओंठ को मिला। बदला तो क्या मिला? ओंठ को चुम्बन और दाँत को? दाँत को बबूल और नीम के या किसी खुरदरे दतून की चोट मिलती रही।

चिढ़कर दाँत जबान को काटने दौडते हैं, तो जीभ फिसलकर अपना बचाव कर लेती। जब कभी ओंठ कट जाता, तो मुँह बंद हो जाता और दाँत दिखाई नहीं देते। दाँत अपने में तिलमिलाकर जल उठते। लेकिन ओंठ हँसते हुये दाँतों की बुरी हालत जाहिर कर देते। आखिर एक दिन अनार की घमंडी दूर हुई। वह बिंबाफल (ओंठ) से गिड गिडा कर बोला, "हम आज से सच्चे पडोसी बनकर जियेंगे।"

परंतु अब बिंबाफल ने ऐंठते हुये अनार की प्रार्थना ठुकरा दी। दाँत (बिंबाफल) पर इसका बुरा असर हुआ। एक एक करके सभी दाँत गिरते चले। ओंठ तो पहले की तरह मुस्कुराते ही रहे। लेकिन दाँत की बिदाई से ओठों की वह पहले की मोहक मुस्कुराहट अब कहाँ? तब उनको अनुभव होने लगा कि पडोसियों की निंदा नहीं करनी चाहिये।

११

छोटों की भी परवाह करो

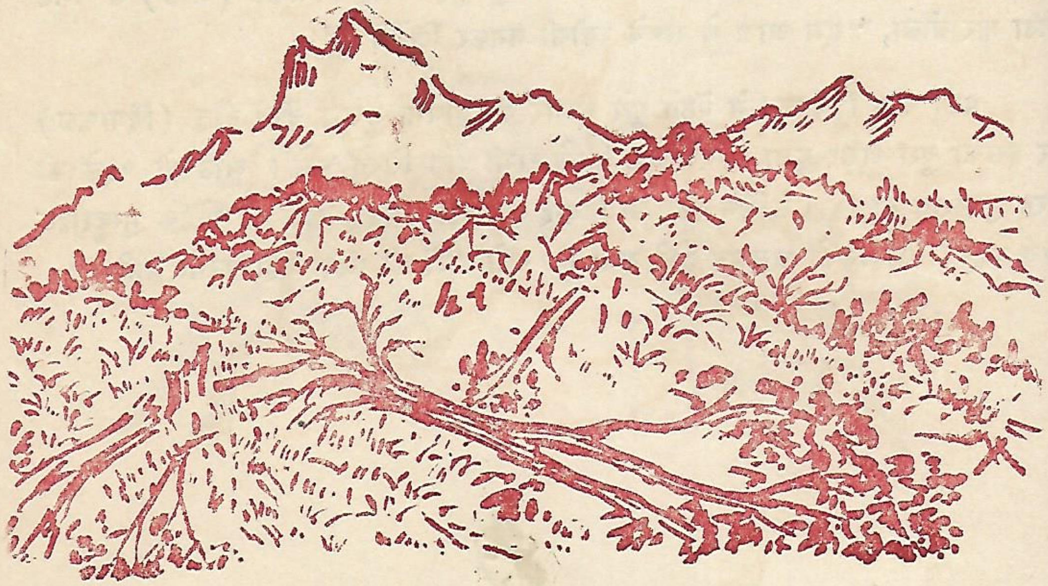

वनसंपत्ति-चादर को ओढ़े पर्वतराज खिलखिलाकर हँस रहा था। सागवान, देवदारु, श्यामतमाल आदि ऊँचे ऊँचे वृक्ष, कई किसम के न्यारे-निराले पत्र-पुष्प-फल पर्वतराजा के राजवैभव को सूचित करनेवाले छत्र-चामर बनकर शोभित हो रहे थे। लेकिन उनकी पाद-धूलि हरी। घास का अस्तित्व कहाँ ?

एक दिन हरी घास ने अपने अस्तित्व का परिचय देने का साहस किया। पर्वतराज से बोलीं, "हे पर्वतराज! आपके भव्य-दिव्य शरीर के लिये हरिताम्बर होकर रहने का सौभाग्य मुझे मिला है। मैं आपके प्रति कितना उपकृत हूँ!"

वृक्षराज ने चिढ़कर धमकाया, "अरी, तू मेरी कूडाकरकट, इतना घमंड करती है ? हम पर्वतराज की विजय-पताका हैं; उसके राजवैभव के छत्र-चामर हैं; उसके सुंदर आभरण और अलंकार हैं। अरी, बेवकूफ ! मेरा क्या भूमा है ! और तेरी क्या सीमा है ! नासमझ ! बड़े-छोटों का भेद मत भूल।"

वृक्षराज की यह ढींग ! दर्रे-घाटियों और गुहा–कंदराओं में गूँज उठी। मानो पर्वतराज 'हूँ' भर रहा हो। घास मुँह में तिनके को लिये स्तब्ध रह गयी।

इच्छाशक्ति चट्टान को भी उपजाऊ बनाती है

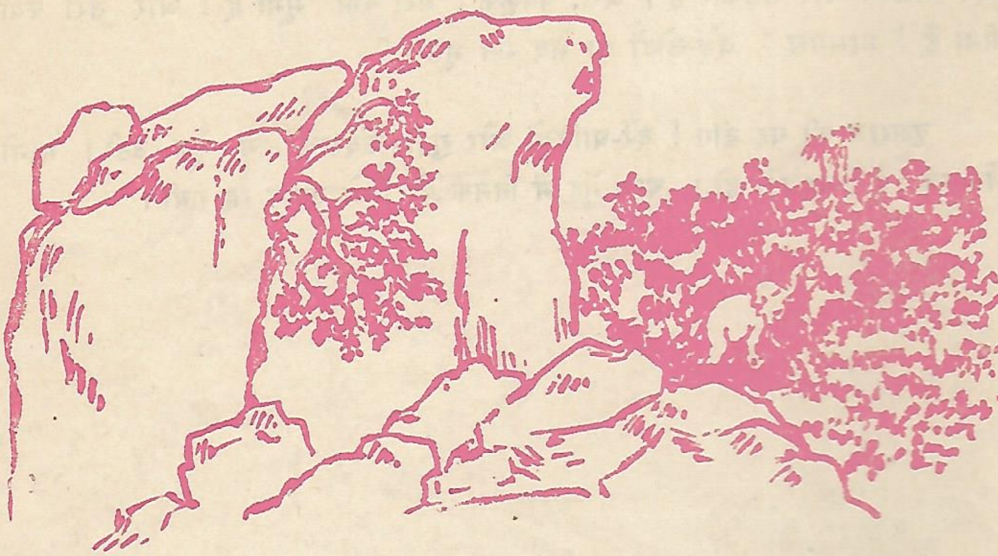

पहाड के बगल में एक बाग खड़ा था। उसको बहुत सुंदर ढंग से सजाया गया था। वहाँ कहीं घास-फूस और कूडाकरकट का नाम व निशान भी नहीं था। इतने अच्छे तरीक़े से बनायी गयी क्यारियों में वर-वधु की तरह कई पौंधे खड़े थे।

अचानक हवा चल पड़ी। हवा के साथ एक बीज क्यारी में आ पड़ा। क्यारी की बेल गरज उठी, "अरे बीज! यह क्या? मेरे लिये बनायी गयी इस क्यारी में तुम्हें देखेगा, तो उखाड फेंकेगा नहीं?"

बीज विनय स्वर में बोला, "हाँ बहनजी, मैं भी आप के बगल में पलने आया हूँ। कल मैं वृक्ष बन जाऊँगा, तो तुम्हारा सम्बल बना रहूँगा। मुझे भी बढ़ने दो। यहाँ दोनों के लिये काफी जगह है।"

"ना ना ना! यह नहीं हो सकता। पास में ही रह जाओगे तो मेरी वृद्धि में जरूर बाधा खड़ा करोगे।"

"अच्छा। री बेल! चिकनी मिट्टी के साथ बढ़ने में भी आतंक होता है। तुम्हारी नाहीं से मेरा संकल्प ढ़ीला पढ़ेगा नहीं। तुम्हारे सामने पत्थर में भी पैदा होकर सिद्ध कर दिखा दूँगा कि इच्छाशक्ति भी क्या बलवान होती है!"

एक दिन आँधी ने बीज को ढ़ोकर नजदीक के पहाडी पत्थर की दरार में डाल दिया। बीज वहीं फूट पड़ा। दोनों तरफ़ के पत्थरोंने उसको बढ़ने नहीं दिया। लेकिन बीज के बढ़ने की इच्छा और भी दुगनी, तिगनी होती गयी। अंकुर वृक्ष बना। उसके फलने-फूलने के लिये पत्थरों ने स्थान बना दिया।

इधर मदहोश हाथीने बाग में घुसकर उसे बरबाद कर डाला। फैली हुई बेल धूल धूमरित होकर तड़पने लगी। पेड़ की डाली में बैठी चिड़िया चहकने लगी, "बढ़ने की इच्छाशक्ति से चट्टान भी खेत बन जाती है; नहीं तो खेत चट्टान होता है।

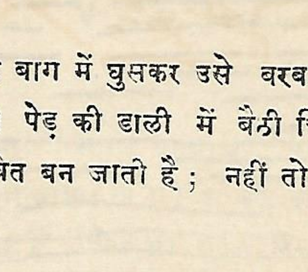

१३

संकल्पी तुषार सागर में भी स्वतंत्र

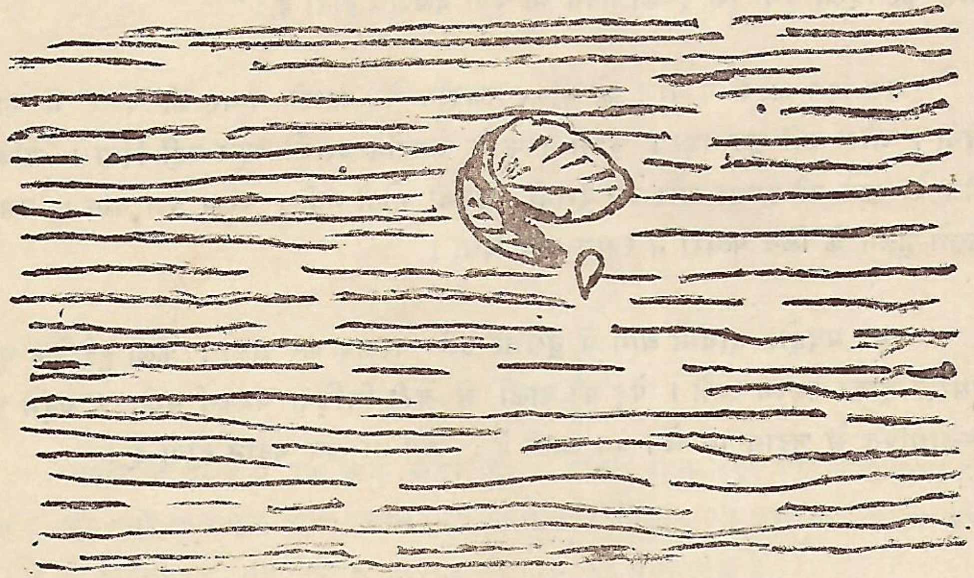

पानी की बूँद जो आकाश-शरीर के पसीने की हो, मानो आसमान से संमुदर की तरफ़ गिरती हुई नजर आयी। वह अपना रास्ता तय करती हुई आ रही थी कि समुंदर हर्ष के मारे बोला, "आओ, आ जाओ बूँद ! तू तो मेरा ही एक कण रहा। सूरज

के ताप ने तुझे अलग कर दिया था। अब फिर तुझे गले लगाये अपनी छाती में छिपा रखूंगा।"

बूँद न समुंदर से आरजू-मिन्नत की, "ऐसा मत कीजिये मालिक! कितने ही दिनों के तप के बाद सूर्यदेव की कृपा से इस आजादी को हासिल किया है। अब फिर छाती में क्यों समा जाऊँ और गुलामी की ज़ंजीर में क्यों जकड़ जाऊँ?"

सागर खिल-खिलाकर जोर से हँसा और बोला, "अब तू बचके जायेगी कहाँ? उतरते देर नहीं लगेगी कि तेरा स्वातंत्र्यसूर्य अस्त हो जायेगा, समझे?"

बूँद ने भी आह्वान दिया, "सागर महाराज! ऐसा हो तो हम दोनों की परीक्षा क्यों न हो जाय? अपनी अपार सीमा के गर्व के बल पर तुम ने मेरी आज़ादी हर लेने की ठान ली है न? मैं नाचीज हूँ। फिर भी शपथ लेती हूँ। अगर मुझमें स्वातंत्र्य की निष्ठा पक्की हो तो तुम्हारे अनंत हृदयप में रहकर भी अपनी आजादी कायम रखूंगी। अलावा इसके तुम्हारी छाती पर चलती हुई चौडाई को भी नाप लूँगी।"

सागर बूँद का प्रलाप सुनकर जोर से हँस पड़ा। पहाड-सी लहरों से जब सागर हंसते-हंसते बूँद की हँसी-मजाक उड़ता रहा, तभी बूँद उन दोनों के बीच गिर पड़ी। अब क्या होगा? सागर अपनी पूरी ताकत जमा कर उसपर धमक पड़ा मानों चूहे पर पहाड़ गिरा हो।

पता नहीं चला कि बूँद कहाँ है। अपनी प्रतिज्ञा की सफलता पर सागर फूले अंग नहीं समाया। इधर बूँद सागर में नहीं, सागर के सीप में समा गयी थी। सीप ने मूँह खोलकर बूंद को अपने पेट में समा लिया। उसने साबित कर दिया कि छोटों का सहारा छोटे ही देते हैं, बड़े नहीं।

बूँद ने धन का आकार धारण कर लिया। वह मोती बनकर चमकने लगी। मोतीहार के हाथ लगी, तो मोती ने अपनी आजादी फिर से पा ली। चूंकि अब उसकी आधी प्रतिज्ञा पूरी हुई, इसलिए उसके मन को चैन कहाँ? वह अपने में छटपटाने लगी कि मेरी प्रतिज्ञा कब पूर्ण होगी।

कुछ ही दिनों के बाद महारानी के गले के हार में शोभित होने लगा। महारानी विदेश-यात्रा के लिए निकली। उस सुख-यात्रा में महारानी ने सप्त सागरों का भ्रमण किया। बूँद की प्रतिज्ञा अब पूर्ण हो गयी। जहाज पर से ही नीचे झाँकते हुए समुंदर से पूछा, "हे समुद्रराज! बोलिये कि मेरी स्वातंत्र्य-निष्ठा की जीत हुई या स्वतंत्रता हर लेनेवाली आपकी शपथ की?"

सागर की लहरें ताल देती हुई गा उठीं, "दृढ संकल्पी तुषार सागर में भी अपनी स्वाधीनता कायम रख सकता है।"

१४

टेढ़े का काम भी टेढ़ा

नाला सूख गया था। चश्मा पानी की कमी को पूर्ण करने की धुन में रहा। पानी पीनेवालों की संख्या अधिक रही; लेकिन चश्मे की शक्ति सीमित। इसलिये चश्मे

के पानी की तलछट ऊपर आयी हुई थी। लोगों ने उसीको पीकर अपनी प्यास बुझा ली। लेकिन एक घमंडी आदमी जिद करने लगा कि मैं पीऊंगा तो साफ पानी को ही पीऊँगा। इसलिए चश्मे का पानी चुल्ले से निकाल-निकालकर बाहर फेंकने लगा। परन्तु उसकी जल्दबाजी से पानी और भी मलिन हुआ। उससे वह चिढ़ गया। पानी को बाहर फेंक निकालने में और जोर लगाने लगा। जैसे-जैसे तल खोदने लगा वैसे-वैसे मलिन पानी फूटने लगा। उसकी बाहुशक्ति कम हो गयी। थककर रेत पर लुढक पड़ा।

इतने में उधर से एक बूढा आदमी आया और पूछा, "अरे भाई, इतना थका-माँदा बेहोश-सा क्यों पड़ा है?"

उसने कहा, "इस चश्मे को कितनी ही बार खाली करने पर मलिन पानी ही निकल आता है। मैंने कसम खायी है कि साफ पानी पीकर ही यहाँ से हटूँगा" बूढे ने समझाया, "अरे भई निर्मल जल के लिए मन भी साफ होना चाहिये। इस ईश्वर-सृष्टि में जब तक मन साफ नहीं बनेगा तब तक शुद्ध वस्तु प्राप्त नहीं होगी। टेढ़े आदमी का काम हमेशा बिगडा ही रहेगा।"

"फिर मैं क्या करूँ?"

"शांत रहो! तुम्हारा मन शान्त होते-होते चश्मे का पानी भी साफ बनेगा। मलिन जल को ओर भी मलिन करना ठीक नहीं। उससे नुकसान ही नुकसान होगा।"

बूढे की बात सुनकर वह चुपचाप बैठा रहा। धीरे-धीरे मल पानी के नीचे उतरता गया। थोड़ी देर में निर्मल पानी नज़र आने लगा। निर्मल जल को पीकर उस आदमी का मन भी संतृप्त हुआ।

गौरव गात्र से नहीं, गुण से

दूज के चाँद की तरह बालक बढ़ने लगा था। बालक के कमल-कली-से मुख पर बरौनियों भोहों के अतिरिक्त कहीं बालों का नाम व निशान भी नहीं था। सिर पर घुंघुरवालेबाल रोज़-ब-रोज़ बढ़ते जा रहे थे। उन बालों को घमंड़ आया। उन्होंने बरौनियों और भौंहों को छेड़ा, "इतने मुलायम चमडे में पैदा होकर भी कितनी मंदगति से बढ़ रही हो? हमारी ओर देखो तो ज़रा! हम कठोर सिर पर जन्म लेकर भी कितनी तीव्र गति से बढ़ रहे हैं?" इस पर बरौनियाँ और भौंहें मौन रहीं। उन्होंने बालों का कोई जवाब नहीं दिया।

इधर बढ़ते हुये सिर के बालों को काटते रहे और दाढियों को मँडते रहे। सिर्फ बाछें खिलती रहीं। एक दिन मूँडने की उनकी भी बारी आयी। अब सिर के बाल

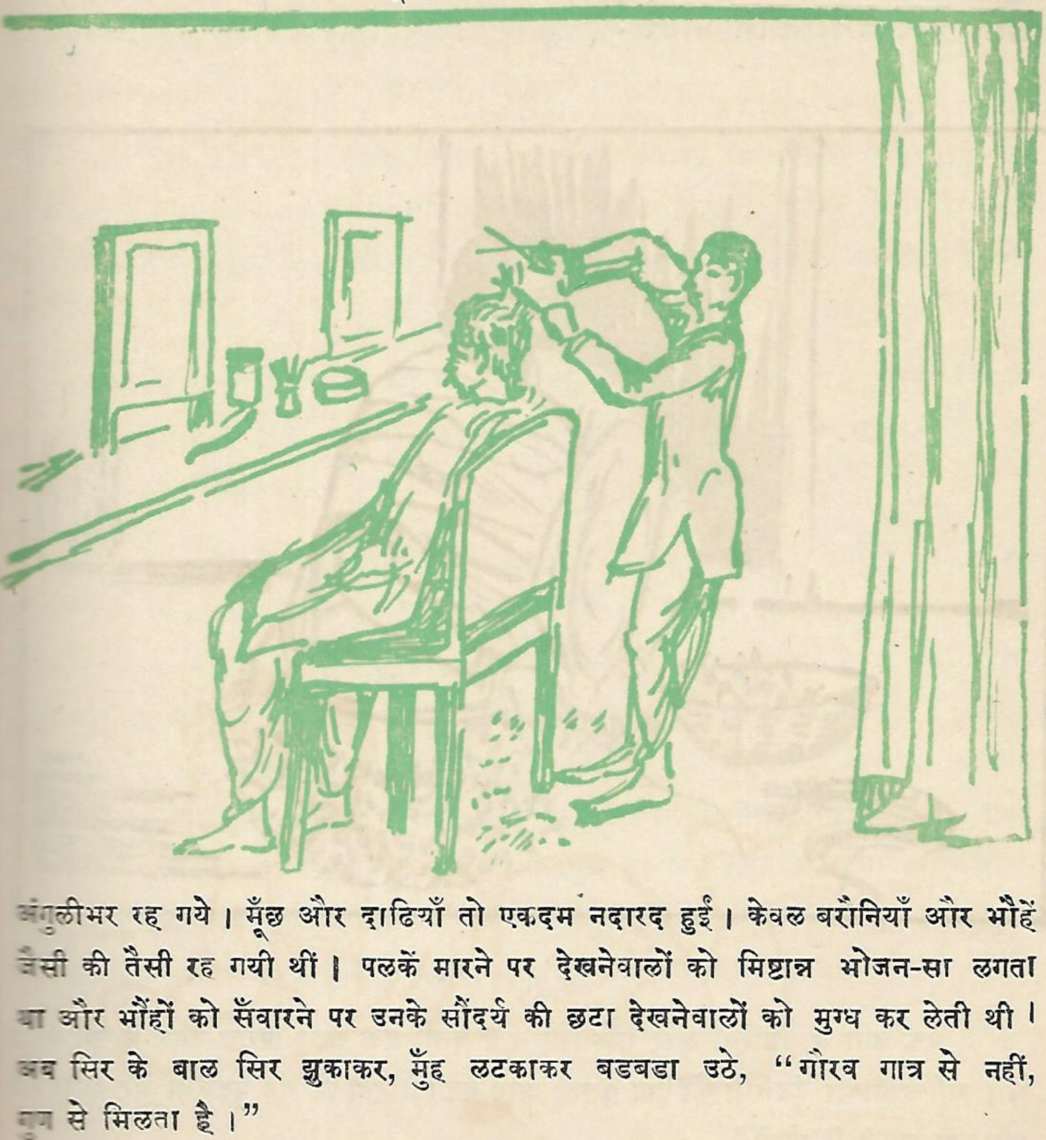

अंगुलीभर रह गये। मूँछ और दाढियाँ तो एकदम नदारद हुईं। केवल बरौनियाँ और भौंहें वैसी की तैसी रह गयी थीं। पलकें मारने पर देखनेवालों को मिष्टान्न भोजन-सा लगता था और भौंहों को सँवारने पर उनके सौंदर्य की छटा देखनेवालों को मुग्ध कर लेती थी। अब सिर के बाल सिर झुकाकर, मुँह लटकाकर बडबडा उठे, "गौरव गात्र से नहीं, गुण से मिलता है।"

१६

कौन कब क्या काम आये !

एक बाग में पुंडरिया और मल्लिका लता दोनों एक साथ अगल-बगल में उग आये थे। गल्लिकालता पुंडरिया को देख कुढती और तडपती रही कि यह पुंडरिया मेरे शरीर को कब तक खुजलाती रहेगी ?

बागवान पुंडरिया के पत्ते तोड ले गया। केवल उसका डंठल ही रह गया। अब भी मल्लिकालता को चैन कहाँ? अंत में रहा-सहा डंठल भी एक दिन मिट्टी में मिल गया! अब मल्लिकालता फूले न समायी। खुशी-खुशी फूलने पलने लगी। उसका देह-भार थोडा हल्का हुआ। रोज-ब-रोज लता तीव्र गति से फैलने लगी।

चन्द दिन बीत गये। उसका संतोष सुंदरता के रूप में व्यक्त होने लगा। उसके शरीर भर में फूल खिल गये। अब मल्लिकालता मन में सोचने लगी, "देखें, मेरे जीवन का सार-सर्वस्व मल्लिका-फूल स्त्रियों की वेणी की शोभा बढ़ायेंगे या शिव की जटा की शोभा बढ़ायेंगे?"

माली सभी फूलों को तोड़कर घर ले चला। मल्लिकालता ने परमात्मा से विनम्र प्रार्थना की, "हे भगवान्! अनुग्रह करो कि मेरे जीवन का सार—ये मल्लिका के फूल अपने योग्य स्थान प्राप्त करें।"

उस दिन गाँव में जहाँ देखो वहाँ उत्साह ही उत्साह। तुरही ने अपनी आवाज से भगवान की पूजा प्रारंभ होने की सूचना दी। जोर से नगाडा बज उठा। बागवान ने अपनी पत्नी के सामने मल्लिका-फूलों को रखकर कहा, "तुरंत माला तैयार करो और पूजा भी प्रारंभ हो जाय!" घर-भर में ढूँढ़ने पर भी धागा नहीं मिला। माली घबरा गया। तभी उसे पुंडरिया के डंठल का बनाया रेशा दिखायी दिया। उसीको लाकर अपनी स्त्री को दिया। जब बागवान की स्त्री माला बनाने लगी, तब वह रेशा बोल उठा, "मल्लिका के फूलो! तुम्हारी माँ मुझे दूर से देखकर भी घृणा करती थी। अब तुम्हारे शरीर को पुंडरिया लपट लेगा, तो खुजलाहट पैदा न होगी?" जवाब में मल्लिका-फूल बोले, "अब तुम्हारी शरण में आने से परमात्मा का सन्निधान प्राप्त होगा न?"

घमंडी न बनो, विनयी बनो

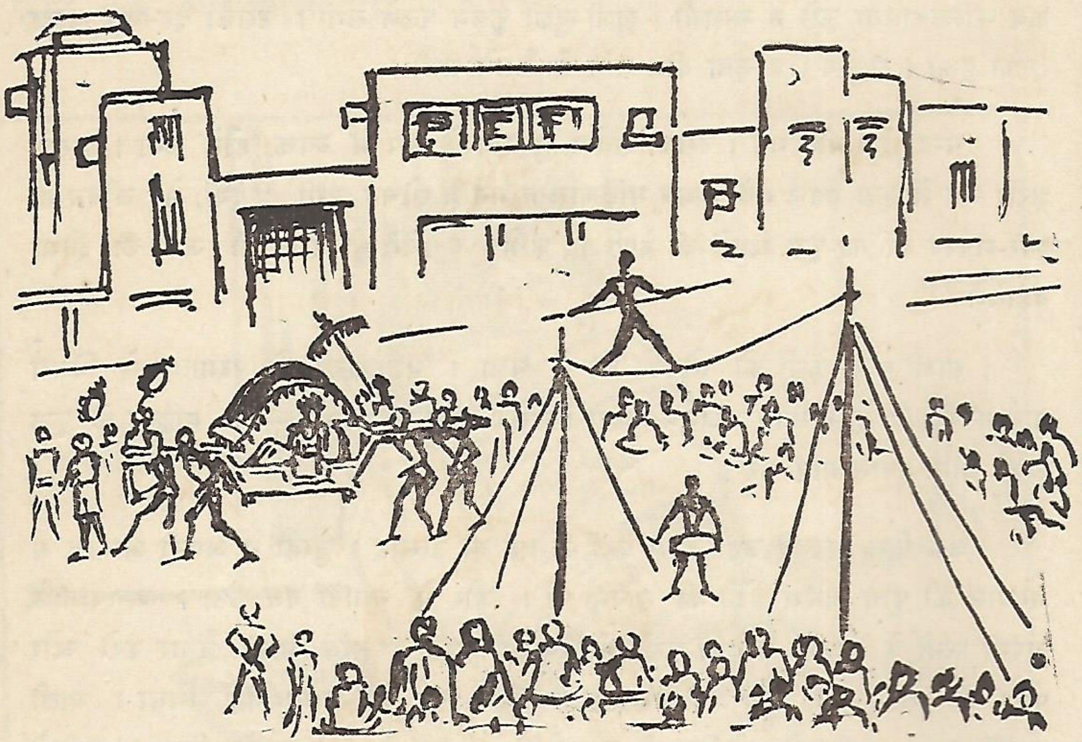

बाँस की झुरमुट मर्मर आवाज़ कर रही थी। उसमें एक सीधी और दूसरी टेढ़ी बाँस एक साथ बढ़ आयी थी। सीधी बाँस इतनी लम्बी थी कि मानो आसमान को छू रही हो। उसने अपने पास की टेढ़ी बाँस से, जो कूबड़ पीठ की तरह बढ़ खड़ी थी, तीखी बातें कहीं, "अरी, बाँसकुल-कलंकिनी! तुम्हें और कहीं जगह नहीं मिली? मेरे बगल में ही खड़ी क्यों है? सीधी होकर बढ़ने की ताकत न हो, तो बाँस के रूप में क्यों जन्म लिया? शरम नहीं आती तुझे?" ये व्यंग बातें सुनकर भी टेढ़ी बाँस सिर झुकाकर मौन रही।

थोड़े ही दिनों में बाँसों को काटकर बेचने के लिये बाजार ले गये। दोनों बिक गयीं। लेकिन अलग-अलग घर चली गयी !

चन्द दिन बीत गये। एक दिन की बात है। एक डोम का खेल शुरू हुआ था। डोम बड़ी लम्बी बाँस पर अपना चमत्कार दिखा रहा था। उसके शरीरभार से बाँस इधर से उधर, उधर से इधर झूलने लगी थी। इतने में उधर से राणा की शिविका निकल आयी। शिविका-दंड रेशमी कपड़ों और मुक्ताहारों से सजा हुआ था। उसने भी डोम की बाँस की ओर नज़र दौड़ायी कि क्या चल रहा है। डोम की बाँस की बुरी हालत देखकर वह सकपका गया। बोला, "छेः छेः आसमान को चूमनेवाला तू ! आज तेरी हालत क्या गयी-गुजरी है। अय्यो ! तुम्हें डोम का डंडा बनना पड़ा। यह क्या बद-किसमती है, भाई !"

डोम के डंडे ने मुड़कर देखा कि अपने बगल में बढ़ आयी टेढ़ी बाँस अब राज-शिविका का दंड बनी है। उसके इस वैभव को देख बोल उठा, "ठीक है, भाई! अब मुझे बुजुर्गों की वाणी का रहस्य मालूम हुआ— आदमी को घमंडी न बनना चाहिये। विनयी होकर चलना चाहिये।"

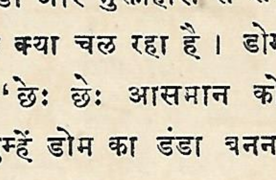

परप्रकाश से निजप्रकाश ही भला :

पूर्णिमा का चाँद पूर्णिमा के प्रेमालिंगन-सुख में अपने को पूर्ण भूल बैठा था। उस अवसर के वैभव का वर्णन अवर्णनीय है। अपना श्रीरूप, अपनी शांति-कांति-दांति, अपना

कला–विकास सुर–नरों के मनोल्लास को विवर्धन करने की अपनी शक्ति से आप खुद राका–सुधाकर मुग्ध हुये-से दिखाई दे रहे थे।

जहाँ–तहाँ चमकते हुये तारों को देख चन्द्रमा को हँसी आयी। शान से बोले, "एकश्चन्द्रस्तमो हंति न च तारागणोपि च!" यह सुनकर उसकी प्रियतमा पूर्णिमा खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

तारे बोल उठे, "सूर्य प्रकाश से प्रकाशमान चाँद और चन्द्रमा की रोशनी से प्रकाशमान ऐ पूर्णिमा! अपने पर–प्रकाश का बखान स्वयं-प्रकाशित हम जैसे तारों के सामने क्यों करते हो? ऐरे-गैरों के सामने तारीफ़ कर लोगे, तो थोड़ा लाभ होगा। भले ही हमारे प्रकाश से तुम्हारा प्रकाश अधिक तेज हो। फिर भी वह तो है पर-प्रकाश ही। इस तुम्हारे पर-प्रकाश-पुंज से हमारा स्वप्रकाश अधिक भला है। बार-बार क्षय होनेवाले चन्द्रमा एवम् पूणमा के रूप में जन्म लेने के बदले स्वयं अपने शरीर से ही प्रकाश प्राप्त करनेवाले दीपक होकर पैदा होना कितना बेहतर है!"

तारों की ये बातें सुनकर पूर्ण चन्द्र और पूर्णिमा दोनों छिप गये, तो फिर पूर्णिमा के दिन ही नज़र आये

प्रेम मृत्यु को भी जीत सकता है

एक दिन ऋषि-आश्रम के दो वटु अपने भावी जीवन की चर्चा कर रहे थे। एक ने कहा-- "विवाहित होकर गृहस्थ जीवन बिताऊँगा।" दूसरे ने उसका विरोध करते हुये कहा-- "इतने दीर्घ काल से आश्रम में रहकर जो तप-ध्यान किया है, स्त्री के मोह में फँसकर उसकी बलि देंगे, भाई! मैं तो आजन्म ब्रह्मचारी होकर कठोर साधना में रत रहूँगा।"

इसके बाद कई साल गुजर गये। सन्यासी वटु देश-भ्रमण करता हुआ विवाहित वटु के यहाँ पहुँचा। अपने बालमित्र के घर गया। अपने बूढे मित्र-दंपतिय से कहने लगा, "तुम बूढे हो गये हो। अब तो अपनी करनी पर पछताओगे न? क्षण-भर के सुख के लिये अक्षयनिधि आत्मानंद को त्याग दिया है।"

"अरे यार, बूढा तो मैं बन गया हूँ और तुम भी मृत्यु दोनों के लिये अनिवार्य है। लेकिन प्रेम के बल पर सती-पति हम दोनों ने मृत्यु को जीत लिया है। तुमने अपनी कठोर साधना से भी मृत्यु को जीता नहीं।"

"ओ हो, यह क्या विसंगत विवाद छेड दिया तुमने? जन्म-पर्यंत योगी रहा मैं मृत्युंजय नहीं बन सका? तुम विवाहित संसारी मृत्यु पर विजय कैसे पाओगे!

"हे मित्र! हमें भी एक दिन मृत्यु की शरण में जाना पड़ेगा। परन्तु मुझे लगता है कि प्रेम के बल पर मैंने मृत्यु को जीत लिया है। और कुछ दिनों में हमारे देहों का नाश होगा, जरूर। तब हम 'हम जीत गये' ऐसा कहते हुये नाच उठेंगे। मृत्यु जीवन पर नहीं,, जीवन ही मृत्यु पर विजय पा चुका है।' इसके सजीव प्रमाण ये हमारे जीवन-पौधे होंगे।"

खिलखिलाकर हँसते, खेलते, कूदते हुये विवाहित मित्र के पोतों का दल देख वह सन्यासी वटु रोमांचित हो उठा। अनजाने उसके मुँह से शब्द निकल पड़े, "वह ठीक ह मेरा विवाहित मित्र प्रेम द्वारा मृत्यु को जीत चुका है। मैं सन्यास की साधना में रत रहता हुआ भी मृत्यु की शरण में जा रहा हूँ।

जाने कौन क्या हो ?

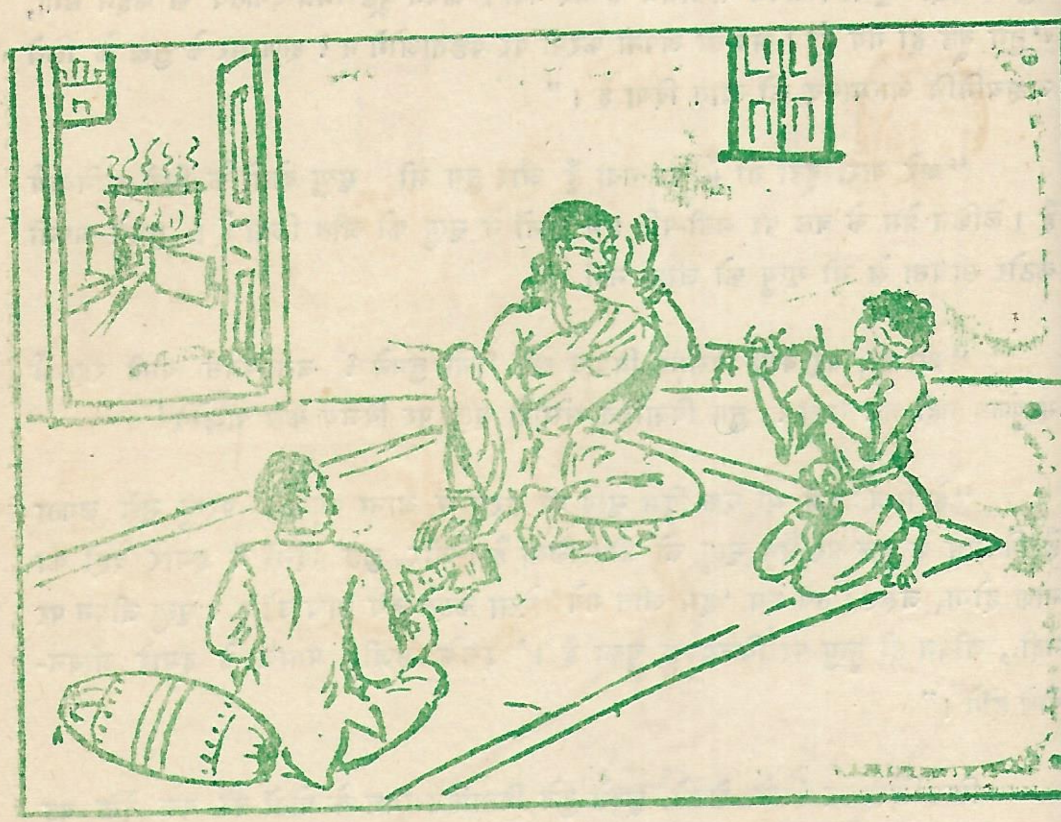

एक दिन की बात है। गन्ने न बँास से पूछ लिया, “अरे, बँास ! तू देखने में ठीक मेरी रह लगती है । परंतु क्या प्रयोजन है ? मेरा हृदय मधुर रस से लबालब है, लेकिन तेरा खाली खाली। सिफ बाहरी सजावट से क्या होगा? कौवा काला, कोयल काली, काली मिट्टी काली और कस्तूरी भी काली। मगर बोलो! कौवा कभी कोयल हो सकता है ? काली मिट्टी कभी कस्तूरी हो सकती है ? ठीक वैसे ही बँास गन्ना बन सकती है ? नहीं, कभी नहीं बन सकती । गन्ना गन्ना ही और बँास बँास ही ।”

व्यंगभरी गन्ने की ये बातें सुनकर भी बाँस उसके मुँह न लगी। गन्ना कारखाने में जाकर शक्कर बन गया। इधर बाँस बाँसुरी और कागज के रूप में बदल गयी। उन दोनों को एक ही आदमी खरीदकर घर ले आया। अब घरवाली चाय बनाने लगी। उबलते पानी में शक्कर डाला गया। शक्कर गरमी के मारे ‘सुंय-सुंय’ आवाज करते फडफडाने लगा।

इधर घर के मालिक ने इतने में कागज पर एक सुंदर प्रेमगीत लिखा था। घरवाली अपने कलकंठ से अभी अभी पति का लिखा प्रेमगीत गाने लगी। उनका पुत्र राग के आधार पिता की लायी गयी बाँसुरी बजाने लगा।

अब तक शक्कर का केवल शरीर उबलता रहा। बाँस से बनी बाँसुरी का मंजुल नाद और उसी बाँस से ही बने कागज पर लिखे मधुर गीत का मंजुल आलाप सुनते-सुनते अब शक्कर का मन भी संतप्त होने लगा। उबलते शक्कर में चाय की पत्तियाँ डालने पर संतप्त मन काला पड गया। पर अब उसका विवेक बोल उठा, “अरे बेवकूफ गन्ना! तुमने पहले ही बाँस की व्यर्थ निंदा की है, और अब उसके सौभाग्य पर बेकार कुढ रहे हो? कौन जानता है कि परमात्मा ने किस में क्या योग्यता भर दी है? इसलिये याद रखो कि जो किसी की निंदा नहीं करता वही समझदार कहलाता है।”

२१

कला की पहचान

एक श्याम को एक मधुमक्खी ओर एक भ्रमर दोनों वन के फूल पर जा बैठे और मधु चूसने लगे। तभी उधर से एक रंग विरंगी पोषाक पहनी तितली रानी एँठती हुई उन दोनों से जा मिली। अब भ्रमर तथा तितली दोनों एक साथ मधुमक्खी की नुक़्ताचीनी करने लगे।

तितली रानी बोली, "रे मधुमक्खी! मैं परमात्मा की चित्रकला का प्रतीक और रसिक लोक का आदर्श हूँ। फूल फूल पर उड़ उड़कर मधु चूसनेवाली मैं कहाँ और कला विहीनता का प्रतीक, कालीं-कुरूप तू कहाँ? चल निकल यहाँ से।"

इतने में बिजली-सी चमकती हुई नागिन फन मारती आ पहुँची। अब भ्रमर और तितली चुपचाप वहाँ से खिसक गये। मधुमक्खी ललकारने लगी, "हे, कला विलासिनो!

क्यों निकले? यह नागिन भी परमात्मा की चित्रकला की प्रदर्शनी है। यह स्वयं संगीत कला की विदूषी न होने पर भी संगीत पर जान देती है। इसकी संगीत-प्रियता तुम्हारी तरह ढोंग नहीं। पूँगी के सुमधुर नाद पर बंदी होनेवाली और अपने को संपूर्ण अर्पण करनेवाली यह नागिन एक आदर्श संगीत प्रेमी है। इतना ही नहीं। सौंदर्य तथा संगीत के साथ-साथ सुगंध के प्रति भी इसका कम प्रेम नहीं। सुवर्ण को कुंदन व सुगंध जैसा है। इस प्रकार कला-संगीत की मुग्ध रानी नागिन का संग तज कर क्यों भागे रहे हो?"

भ्रमर और तितली एक साथ बोल उठे, "ओह, यह नागिन! यह तो विष-जन्तु है!"

मधुमक्खी झिडकती बोली, "कला-प्रेम में विष मिलने पर जो खतरा पैदा होता है, कलाप्रेम से कलाविहीन होना बेहतर है। याद रखो कलाविलासिनो! तुम्हारी कला केलिये है न कि विलास केलिये। जीवन स्वयं एक श्रेष्ठ कला है। इस तथ्य को कला क्या कला है! वह तो कला की कतल है।"

२२

सर्वस् शिव प्रसादम्

एक दिन मोर पानी में अपने रूप को निखर कर फूले न समाया। दूसरे ही क्षण पछताने लगा, "जब कभी मैं पर फैलाकर नाचने लगूँ तो वाह, क्या सुंदरता बिखर जायेगी। वह कौन है, जो रंगबिरंगी सौ आँखोंवाली मेरी परों का सौंदर्य देखकर मुग्ध नहीं होगा? मेरे इस सौंदर्य से प्रभावित होकर ही मुगलों ने मयूर सिंहासन तयार किया है न? जब मैं नाचने लगता हूँ, तो सारा वन मुझे देखते रह जाता है। भगवान ने मुझे नृत्य-कला दी है; रूप दिया है; मगर राग क्यों नहीं दिया है? फिर इन नृत्य और रूपों का क्या प्रयोजन? यदि मैं गाने लगूँ, तो सारा बना बिगड़ जाता है। मेरी इस रूप-कला केलिये ऐसा स्वर ठीक लगेगा? जिस सरस्वती का मैं वाहन हूँ, जो संगीत की अधिदेवता

है; उसने भी मुझे कोयल-सा गला प्रदान नहीं किया। इस एक कमी के कारण अन्य मेरी सारी संपत्ति व्यर्थ सिद्ध हो गयी है।

उधर कोयल ने भी जल में अपना रूप देख लिया। देखते-देखते उसका पंचमस्वर बंद हुआ। कोयल सोचने लगी, "मेरा स्वर कितना मीठा! लेकिन मेरा सौंदर्य कितना भद्दा! कौवा और मुझ में क्या भेद है? केवल इस मधुर स्वर से मुझे क्या लाभ होगा?

सुननेवाले के कान केलिये मीठा लगता है, तो मेरे लिये क्या मिल सकता है? मेरा क्या सौभाग्य हो सकता है? ओह, मुझे भी मोर के रूप और रंग; नृत्य और सौंदर्य होता! अह हा! मोर का वह क्या सौंदर्य! वह क्या नृत्य-वैभव! इसीलिये वह सरस्वती माता का वाहन बन गया है। सब के भाग में क्या यह बदा होता है? मुझ जैसे रूपहीन और नाट्य विहीनों का जन्म व्यर्थ है।" इस प्रकार सोचती-सोचती मौन हो बैठ गयी।

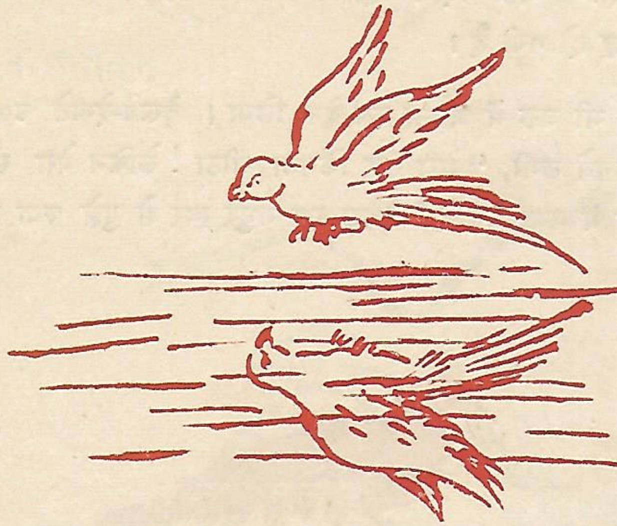

दूसरी तरफ एक तोते ने अपना रूप निरख लिया ! अपने आप कुढने लगा, अय्यो ! मेरा केवल रूप ही है। न मोर का नृत्य है और न कोयल का राग। मेरा क्या जीवन है ? इसीलिये लोग तोतों को पकडकर पिंजडे में बँद कर रखते हैं। "

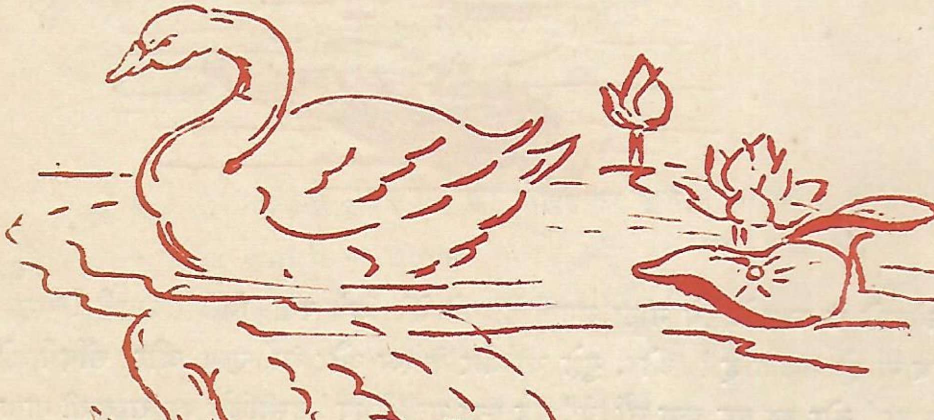

एक दिन सरोवर में तैरता हुआ हँस चडपडाने लगा, " मेरा सिर्फ रूप ही रूप है

न मोर का नृत्य, न कोयल का राग और न तोते की मीठी बोली। जिस ब्रह्मदेव ने वेदों को रचाया है, उसने मुझे अपना वाहन बना लिया है। परंतु 'पंडित-पंछी' का पद तोते को दिया। 'दिया तले अंधेरा' इस उक्ति के अनुसार उसका वाहन मुझे न मोर जैसा नृत्य आता है, न कोयल जैसा गाना। खैर! यह तो कोई बात नहीं। मगर तोते की तरह मीठी बातें भी कर नहीं सकता? सच है कि बडों के यहाँ भूखों के लिये मात्र स्थान बना रहता है। इस के लिये मेरा जीवन एक अच्छा मिसाल है।"

अचानक वन में असंतृप्ति के तडपन के फूटते फव्वारे को देखकर वन की अधिदेवी वासंती दिखाई दी। सबों को संबोधित करती बोली। "आप लोग व्यर्थ की चिंता में रत हैं। जीवियों का ऐसा ही स्वभाव होता है। अपनी अच्छी बातों को भूलकर अन्यों की बातें चाहते हुये दुखी होते हैं। यह जीवियों का सहज स्वभाव है। लेकिन ये पेड-पौधे, ये पहाड-परबत, ये नद-नाले प्रकृति माता की सभी अचर वस्तुएँ इस प्रकार की चिंता में पडी नहीं रहतीं। परंतु सृष्टि के चर जीवी मात्र सदा प्राप्त वस्तुओं की घृणा करके अप्राप्य और असंभव वस्तुओं की चाह लेकर तडपेत रहते हैं। हे, मोर! परमात्म ने तुझे नृत्य तो दिया है। वर्षा-ऋतु में मात्र घिरे बादलों का गर्जन सुनते-सुनते तेरे पाँवों में नृत्य उमड पडता है। परंतु तब कोयल मौन रह जाती है। मुंह खोल भी नहीं सकती वसंत के आगमन से तेरे पैरों में नृत्य के रूप में चलती कला अब कोयल के कंठ में गीत होकर छूट पडती है। यह सिर्फ वसंत-ऋतु में होता है।

अन्य ऋतुओं में तोता बोलता है। ताकि वन शांत और मौन रहे। यही विधाता का उद्देश्य होता है। हंस व्यर्थ चिंता करता है कि उसमें एक भी कला नहीं है। क्या तैरने की कला नहीं है? मोहनी गति नहीं है उसकी? सरोवर में तैरने की कला मोर, कोयल और तोते में कभी संभव होगी क्या? जब हँस तैरता कमल-सा सरोवर में चलने लगता

है, उसे देखने को दो आँखें काफी नहीं होतीं। बेकार विकलित क्यों होते हो? प्राप्त वस्तु को भूलकर अप्राप्त की इच्छा करके तड़पते रहना क्या बड़ी बात है? मोर का नृत्य, कोयल का गीत, तोते की बोली और हँस की गति ये सभी शिवप्रसाद ही हैं। शिव ने जो भी दिया है, उसी में तृप्त रहोगे, तो शिव भी संतृप्त रहेगा। शिव ने तुमको कष्ट भोगने के लिये पैदा नहीं किया है। आनंद प्राप्त करने को पैदा किया है। वह है आनंद रूप और अमृतखना उसकी सृष्टि भी क्या है? संतोष शरधि से पैदा हुआ अमृत कलश है। सभी को शिवप्रसाद मानकर आनंदामृत का सेवन करना चाहिये। असंभव की चाह करके दुख-विष का सेवन नहीं करना चाहिये।"

ये मीठी बातें सुनकर घन गर्जन के बिना मोर जोर से नाचने लगा; वसंत के बिना कोयल गानोन्माद में कलरव करने लगी; पके फलों के बिना तोता बोलने लगा और कमल के बिना सरोवर में हंस तैरने लगा। वन फिर से मंगलमय बन गया।

२३

जीने मरने की महान समस्या

एक शहर में एक बड़ा वाचनालय रहा। एक दिन उसमें एक दिलचस्प घटना घटी। व्यवस्थापक के कमरे के सामने पुराने अखबारों की ढेर लगी थी। पुरानें अखबार तुले जा रहे थे। एक मन, दो मन, तीन मन इसी प्रकार मन के मन तुले जा रहे थे। इस काम से चिढ़कर एक अखबार ने व्यवस्थापक से पूछा, "हमें क्यों तोलते हो?"

"रद्दी कागज खरीदनेवालों के हाथ बिके जा रहे हो।"

नहीं, नहीं, यह तो बड़ा जुलम और गुनाह है। जिस दिन हम यहाँ आये थे, तब हमारा कितना आदर किया गया। हम से कितने लाभ उठाये गये। फिर दूसरे दिन ही एक कोने में डाल दिया और अब रद्दी ठहराकर बेचने लगे हैं। तुम मानव बड़े नमक हराम होते हो।"

"अरेरे, समाचार-वाहक! नाराज मत होइयेगा। जरा सुनिये तो सही। इस दुनिया में जिस किसी का भी जबतक उपयोग होता रहता है, तब तक उसका आदर बना रहता है। जिस दिन यह साबित होगा कि अमुक चीज से अब कोई फायदा नहीं, तभी उसका अस्तित्व नष्ट हुआ समझिये। उसे अपना स्थान खाली कर देना पड़ेगा। बेकाम का सिद्ध होने पर भी जीने का हठ करना बेकार है।"

"अय्यो! क्या हम अब बेकाम के हो गये? हमसे भी गयी गुजरी वस्तुएँ इस वाचनालय में नहीं हैं क्या? अरे, महाशय! उन ताडपत्रों को जरा देखिये न, जो दीमक का भोजन बनकर सड़ रहे हैं? फिर भी उनको कैसी-कैसी दवाइयाँ लगाकर जिलाने के महान प्रयास किये जा रहे हैं। फटे पुराने चिथडे कपडों में बंधी हुई उन

पोथियों की पोटलियाँ देखिये! छूने पर वे चिढ़ पड़ती हैं और खोलने पर टप टप गिर पड़ती हैं। ये सभी बेकाम की नहीं। सिर्फ हम बेकार साबित हुई हैं क्या? ऐसे तो हमारा शारीरिक बल भी तो कम हुआ नहीं है।"

"हे, अखबार महाराज! बस करो जी अपना बखान। बाहरी चमक-दमक, रंग-भंग और शारीरिक बल से किसी का मूल्य आँका नहीं जाता; बल्कि अंतरशक्ति से आँका जाता है। फटे पुराने कपड़ों में बँधे हुये ताड़पत्रों का ज्ञान शताब्दियों के बीत जाने पर भी कभी सड़नेवाला नहीं। उनमें गहरा अनुभव और अपार सुधारस लबालब भरा पड़ा है। इसीलिये उनका बाहरी रूप जर्जर होने पर भी उनका स्थान-मान तथा अस्तित्व बढ़ा-चढ़ा और महान है। तुम्हारे यहाँ इधर-उधर की खबरें मौजूद हैं, लेकिन उनमें बुद्धिमानी कहाँ?"

"अरे, महाशय! हम सिर्फ खबरें नहीं फैलाते, संपादकीय को भी प्रकाशित करते हैं।"

"ओहो, हाँ जी! मैं मानता हूँ कि तुम भी अपने साथ चन्द अच्छी खबरें लाते हो। इने गिने संपादकीय और लेख काटकर ही तो रद्दी अखबार बेचते हैं; समझे?"

"ऐसी बात! तुम्हारे लिये तो आपकी खबरें कल के लिये बेकार साबित हो सकती हैं। परन्तु कुछ दिनों के बाद हम खुद इतिहास बन जाते हैं न? तब क्या होगा?"

"याद रखो यार! अखबार में जो भी लिखा जाता है, वह सब साहित्य नहीं बनता। जो गुजर जाता है, वह इतिहास नहीं बनता। जो पत्थर में खोदा जाता है; वह शिल्प कला नहीं। जो गाया जाता है; वह संगीत नहीं। जो बजाया जाता है; वह वीणा नहीं। जो हक दिया जाता है; वह इनसाफ़ नहीं। जो खिलता है वह खुशबू नहीं फैलाता। जो जिन्दा है; वह मूल्यवान नहीं। जो सत्वपूर्ण है; और जो तत्वपूर्ण है; वही जी सकता है और जो जीता है; वह मरता भी है।"